शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 242-248

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ. कुसुम कुमारी
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर.

Corresponding Author :
डॉ. कुसुम कुमारी
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर.

वाल्मीकि रामायण में सांस्कृतिक चेतना का समीक्षात्मक अनुशीलन

"कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्।।"

मनुष्य भारतीय संस्कृति के अनुसार स्वतन्त्र प्राणी तो अवश्य है, परन्तु ईश्वर भारतीय संस्कृति का आदर्श है। वह 'परम पुरुष' है! इस परात्पर पुरुष का वर्णन 'वेद' तथा 'अन्यायन्य शास्त्रों' में किया गया है। इस पुरुष के वर्णन से भारतीय सांस्कृतिक चेतना का मार्ग प्रशस्त होता है। आचार्य शंकर ने चराचर और मानव की विकासशील प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए लिखा है कि "मानव व्युत्पन्न चित्त है, उसमें पौधों की संवर्धनशीलता तथा पशुओं की संचरणशीलता के अतिरिक्त पारदर्शिता, रहस्य, विवेक आदि विशेष रुप से प्रतिष्ठित है।"[1] इन्हीं विशेष गुणों के कारण वह नित्य अभ्युदयशील प्राणी रहा है। मनुष्य की आवश्यकताएं केवल आधिभौतिक या शारीरिक ही नहीं है अपितु अध्यात्मिक, रसात्मक, बौद्धिक और सामाजिक भी है। मनुष्य ने अन्य प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए योग दर्शन से आत्मा और परमात्मा का अनुभव किया है। शिल्प और क्ला की परख की है, विज्ञान का अनुशीलन किया है और समाज की सुव्यवस्था के लिए योजनाएं बनाई है। और निरवधिकाल तक मानव अपनी सांस्कृतिक चेतना में लगा रहेगा। इस चेतना के पीछे उसकी बुद्धि, वाणी सौन्दर्य भावना और सहानुभूति की नित्य अपेक्षा रहती है इनको सतत उच्चतर स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए ही मानव अपने व्यक्तिगत और सामाजिक सुख-सौरभ की सृष्टि करता है, मनुष्य की यही प्रवृति उसकी 'संस्कृति' है। "आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि - एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते"[2] यही मानव जीवन की कला है, यही मानव व्यक्तित्व के विकास की सनातन प्रक्रिया है।

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुद' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय करने से बनता है। इसका अर्थ है परिष्कृत अवस्था अथवा सुधरी हुई स्थित। यह अर्थ

व्याकरण की दृष्टि से है, परन्तु संस्कृति का अर्थ आज-कल कुछ भिन्न लिखा जाता है, जैसे किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है उसी का नाम संस्कृति है।[3] मनुष्य ने धर्म का जो विकास किया, दर्शन-शास्त्र के रूप जो चिन्तन किया, संगीत और कला का जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं व संस्थाओं को विकसित किया, उन सबका समावेश हम 'संस्कृति' में करते है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसकी संस्कृति का विकास भी सामाजिक व सामूहिक रूप से ही होता है। संस्कृति के प्रमुख तत्वों, धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत कला आदि से युक्त मानव को हम मानव कहते है और इन तत्वों से रहित को पशु कहने लगते हैं। जैसे कहा गया है कि-

"साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः
पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवनमानरु तद् भागधेयं परमं
पशूनाम्।।"

यों तो आहार निद्रा, भय और मैथुन ये सब मनुष्यों और पशुओं में समान रूप में पाये जाते है। परन्तु मानव जाति की यही विशेषता है कि उसमें धर्म एक ऐसा तत्व विद्यमान है जो उसे पशुता से दूर हटाकर मानवता की ओर खींच ले जाता है। विभिन्न धार्मिक पहलुओं से ओत-प्रोत इसी समष्टिगत तत्व को 'संस्कृति' कहते है और इससे हीन को असंस्कृत अथवा असभ्य। जैसा कि कहा गया है-

"आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्
पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामिको विशेषो धर्मेण हीनः पशुभिः
समानः।"

अतः 'संस्कृति' के प्रभाव से ही व्यक्ति अथवा समष्टि समाज ऐसे कार्यों में लगता है, जिनसे पारिवारिक, सामाजिक साहित्यिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति होती है। इस प्रकार हम देखते है कि 'संस्कृति' का क्षेत्र व्यापक और प्रयोजन महान है। रामायण में मानवता का आदर्श प्रतिपादन करने वाले, काव्य तरु पर आरुढ़ प्राचेतस् ब्रह्मविद् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि भारतीय संस्कृति के संस्कार मनीषी है। उनके इस अमरग्रन्थ में मानवता के लिए एक चिरन्तन संदेश है, उनकी वाणी में सनातन आदर्शों की परिणति है और उनके स्वरों में मानव संस्कृति का मधुर संगीत। इसलिए कहा गया है-

"कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्।।"

रामायण में जीवन (व्यवहार) और दर्शन (सिद्धान्त) दोनों का समन्वय मिलता है। मानव धर्म तत्पर राम एवं सत्यपात्रों के जीवन आदर्श से एक ऐसे मानव दर्शन की स्थापना रामायण में की गई है जो मनुष्य के जीवन में असीम आनन्द का विधान उपस्थित करता है। रामायण में लोक मंगलकारी कर्तव्य का एक ऐसा लोक है जिसमें अरण्य भी प्रसाद, कन्दमूल भी षड्रस व्यंजन, धराशन भी कोमलशय्या शयन एवं अनेक विध क्लेश भी विविध सुखों का सा आनन्द देते है ? अतः 'संस्कृति' के प्रभाव से ही व्यक्ति अथवा समष्टि समाज ऐसे कार्यों में लगता है, जिनसे पारिवारिक, सामाजिक साहित्यिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति होती है। इस प्रकार हम देखते है कि 'संस्कृति' व्यापक और प्रयोजन महान है।

रामायण में वर्णित शिक्षा के आदर्शों से व्यक्ति का पूर्ण शारीरिक विकास, पूर्ण मानसिक विकास पूर्ण बौद्धिक विकास भाषागत कुशलता का विकास, विषयों का विशद एवं सूक्ष्म ज्ञान व्यक्तित्व का नैतिक विकास तथा सुसामूहिक चेतना का विकास निश्चित हो सकता है। महर्षि का कृतित्व आध्यात्मिक- भौतिक- सामाजिक- राजनैतिक-पारि-वारिक- ग्रामीण-आरण्यक तथा माता-पिता, भ्राता, पति-पत्नी, सुहृट-राजा-प्रजा-देव- राक्षस- मानव आदि का अनुपम चित्रण करने में पूर्ण सफल रहा।

वाल्मीकि रामायण में जीवन के प्रत्येक सम्बन्ध में इसी आदर्शत्व की व्यवहारिक स्थापना हुई। माता-पुत्र का सम्बन्ध श्रद्धा भरित, स्नेह संकुल तथा स्पृहणीय होता है। कैकेयी ने सौतेली माँ का आदर्श अवश्य ही ध्वस्त कर दिया किन्तु राम के सुपुत्र के चरम आदर्श को प्रस्तुत किया। कैकेयी से क्रुद्ध होकर राजा दशरथ ने भरत सहित कैकेयी का त्याग

कर दिया और उसके पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया था। लंका विजय के पश्चात् स्वर्ग से आये पिता दशरथ से राम ने केवल एक ही याचना की थी कि दशरथ द्वारा किया गया घोर शाप कैकेयी को स्पर्श न करे-

सुपुत्रां त्वां त्यजायीति यदुक्ता कैकेयी त्वया।
स शापः केकयी घोरः सुपुत्रां न स्पृशेत् प्रभोः।।[4]

आज के भौतिकवादी जीवन में भरत जैसे भाई का उदाहरण ढूंढे भी नहीं मिलता। जिसने बड़े भाई को दुःख से सन्तप्त होकर चैदह वर्षो तक स्वयं भी वनवासी का सा जीवन व्यतीत किया।[5] भारतीय ऋषि ने समाज के विभिन्न कार्यो की दृष्टि से चतुर्वर्ण की जिस अद्भुत अवधारणा को प्रस्तुत किया था वह चातुर्वण्र्य व्यवस्था वाल्मीकि रामायण में पूर्णतः स्थापित हो चुकी थी। रामायण में प्रायः चारों वर्णो का उल्लेख किया गया है। दशरथ के सुशासन में ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोग देवता और अतिथियों की पूजा करते थे तथा वे सब कृतज्ञ, उदार, पराक्रमी और शूरवीर थे-

"वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः।।"[6]

दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ में वसिष्ठ ने अधिकारियों को आज्ञा दी थी कि सभी वर्णों की सत्कारपूर्वक पूजा होनी चाहिए- "सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः।।"[7] रामराज्य में भी चारों वर्ण लोभरहित थे और सन्तुष्ट होकर अपने-अपने कामों में संलग्न रहते थे-

ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेवं कर्मभिः।।"[8]

अयोध्या में रहने वाले चारों वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शुद्र अपने से उच्च वर्ण की आज्ञापालन तथा सेवा करने में लगे रहते थे-

"क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः।।"[9]

उपर्युक्त उदाहरणों से यही स्पष्ट होता है कि रामायणकाल में चातुर्वण्य व्यवस्था स्थापित थी। महर्षि वाल्मीकि ने ब्रह्मज्ञान की ओर उन्मुख रहने वाले तथा परमतत्व एवं सत्य के अन्वेषण में ही लीन रहने वालों को सर्वोच्च वर्ण में रखा है, उन्हें ही ब्राह्मण कहा है। ब्राह्मण के गुण थे- इन्द्रियसंयम, अध्ययनशीलता, दान, विनम्रता, ईष्र्यारहित, बुद्धि-मता, यज्ञनिपुणता आदि-

"स्वकर्मनिरता नित्यां ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः।
दाना ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ।।"[10]

ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता के कारण ही राजा के पुरोहित तथा मंत्री का पद इन्हें प्राप्त होता था। ब्राह्मण पुरोहित का ही अत्यधिक सम्मान होता था। राजभवन में वशिष्ठ के आने पर दशरथ तथा अन्य सभासद अपने-अपने स्थान से उठकर खड़े हो जाते थे-

"तमागतमभिप्रेक्ष्य हित्वा राजासनं नृपः।
पप्रच्छं स्वमतं तस्मै कृतमित्यभिवेदयत्।।
तेन चैव तदा तुल्यं सहासीना सभासदः।
आसनेभ्यः समुतस्थु पूजयन्ताः पुरोहितम्।।"[11]

महाराजा दशरथ के मृत्यु के समय उनके चारों पुत्रों से एक भी अयोध्या में नही थे। उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा मन्त्रियों ने मिलकर राजपुरोहित वशिष्ठ को ही अधिकृत किया था कि किसी योग्य पुरुष को ही राजपद अभिषिक्त करें-"कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजानमिहाभिषेचय"[12] वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय वर्ण का स्थान था क्षत्रिय वर्ण अपने पराक्रम तेजस्विता, ब्राह्मणों का आज्ञापालन होने के साथ-साथ दान, यज्ञ एवं युद्ध में देह त्याग आदि गुणों के कारण राजा होता था- "दानं दीक्षा च यशेषु तनुत्यागो मृधेषु हि।"[13] राम ने वनगमन के समय अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को ब्राह्मणों तथा सेवको को दे दिया।[14] तत्कालीन संस्कृति में राजा बनने का अधिकार क्षत्रिय वर्ण को ही था। चित्रकूट में राम से अनुरोध करते हुए भरत ने यही धर्म प्रतिपादित किया था- "एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्याभिषेचनम्।"[15]

पराक्रमी होने के कारण क्षत्रिय ही समाज-रक्षण में समर्थ थे। राम के विशिष्ट गुणों में एक 'रक्षिता जीव लोकस्य' भी था। चित्रकूट में भरत ने राम से बार-बार कहा या कि वनवास की अपेक्षा धर्मपूर्वक चतुर्वणयुक्त प्रजापालन करते हुए आप इस क्लेशसाध्य कर्तव्य का पालन कीजिए- "धर्मेणचतुरो वर्णान् पालयन् क्लेशमाप्नुहि।"[16] प्रजापालन में भी गो, ब्राह्मण एवं देश के हित का रक्षण क्षत्रिय के लिए

सर्वोपरि था। स्त्री होने के कारण अवध्य ताड़का के वध का निश्चय थी राम ने इसी कारण किया था- "ग्रोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च।"[17] इस प्रकार प्रजाओं के भरण-पोषण, रक्षण एवं धर्माचरण से युक्त क्षत्रिय मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग का अधिकारी होता है-

"भृत्यानां भरणात् सम्यक् प्रजानां परिपालनात्।
अर्थदानाच्च धर्मेण पिता नस्त्रिदिवंगतः।।"[18]

सम्पूर्ण समाज की आर्थिक धुरी को सम्बल प्रदान करने वाला वर्ण वैश्य ही था। वैश्य वर्ण के गुण, धर्म, कर्तव्य आदि ब्राह्मण और क्षत्रियों के सदृश ही संस्कार सम्पन्न होने के करने के कारण इन्हें भी यज्ञ करने के साथ-साथ हीं वेद पढ़ने तथा तपस्या करने का अधिकार प्राप्त था। चित्रकूट में राम ने भरत से यही प्रश्न किया था "हे तात-कृषि और गोरक्षा से आजीविका प्राप्त करने वाले वैश्यजन तुम्हे प्रिय तो है क्योकि वैश्यजन के अपने कर्म में संलग्न रहने पर ही यह लोक सुखपूर्वक उन्नतिशील होता है-

"कच्चित ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।
वार्तायां संश्रितस्तात् लोकोऽयं सुखमेतित।।"[19]

तत्कालीन संस्कृति में शूद्र को वेदाध्ययन तथा यज्ञानुष्ठान का अधिकार नहीं था इनको श्रेष्ठ वर्णो की निरन्तर सेवा करते रहने का आदेश था। यही इनके लिए सबसे बड़ा धर्माचरण था। समाज में भृत्य, सेवक, शिल्पी आदि जनशूद्र वर्ण के ही होते थे किन्तु अश्वमेध यज्ञ के समय जितने शिल्पी, भृत्य आदि कार्यरत थे वशिष्ठ के कहने पर उनका विशिष्ट सत्यकार किया गया था-

"यज्ञकर्मसु ये व्यग्राः पुरुषः शिल्पिनस्तथा
तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम्।।
ये स्युः सम्पूजिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन्।
तथा सर्वे सुविहितं न किंचित् परिहीयते।
तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतियुक्तेन चेतसा।।"[20]

पम्पा सरोवर तट पर श्री रामचन्द्र जी शबरी (शूद्र जातीय महिला) से मिलने गये और उसके सेवा से प्रसन्न होकर उसे सिद्धा, तापसी, श्रमणी, तथा तपोधने कहकर सम्बोधित किया और उसकी तपस्या के सम्बन्ध में कुशल प्रश्न करते है-

"तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्याय कृता´जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः।
पा धामाचमनीयं च सर्वे प्रादात् यथाविधि।
तामुवाच ततो रामः श्रमणी धर्मसंस्थिाम्।।
कच्चिते निर्जिता विघ्नाः कच्चिते वर्तते तपः।
कच्चिते नियतः कोप आहारश्य तपोवने ।।"[21]

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का आदर्श सामा´जस्य रामायण में प्राप्त होता है। आश्रम व्यवस्था की योजना का कारण यही था कि मनुष्य का जीवन हमेशा सुखमय बना रहे तथा समस्त प्रयोजन, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थो भी पूर्ण हो जाय। आश्रम के विशेष आचार तथा कर्तव्यों का भी निर्धारण किया गया-

प्रथम- ब्रह्मचर्याश्रम में विविध इन्द्रिय-संयमनपूर्वक विद्याग्रहण किया जाता है।

द्वितीय- गृहस्थाश्रम में इन्द्रियसुख ग्रहणपूर्वक अर्थोपार्जन एवं दान का विधान है।

तृतीय- वानप्रस्थ में गृहस्थाश्रम का त्याग करके, जीवन की आवश्यकताओं को अत्यल्प बनाकर वर्षा, आतप, हिम सहते हुए वन में ही रहने का कथन है।

चतुर्थ- संन्यास आश्रम है जिसमें व्यक्ति समस्त राग, द्वेष को त्यागकर समाज का हित चिन्तन करता हुआ अपनी अन्तिम अवस्था व्यतीत करता है।

ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन तथा ज्ञानार्जन ही एक मात्र लक्ष्य था। राम निरन्तर वेदाध्ययन, भोजनादि, संयम, ब्रह्मचर्यपालन एवं गुरु सेवा के कारण अत्यन्त कृशकाय हो गये थे - "वैदेश्च ब्रह्मचर्यैश्च गुरुभिश्चोपकर्शितः।"[22] रामायण में गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में श्रेष्ठ कहा गया हैं। इस आश्रम की महत्ता के कारण भी अनेक हैं पुरुषार्थ चतुष्टय से अर्थ पुरुषार्थो के संपादन से केवल इसी आश्रम में किया जा सकता है। आश्रम अन्य आश्रमों की आधार शिला है क्योकि अन्नदान एवं धन दान से गृहस्थ व्यक्ति ही तीनों आश्रमों का पालन करता है। "यथाशक्ति चान्नेन सर्वाणि भूतानि"[23] श्री राम जी के वन जाने के अवसर पर भरत जी अयोध्या लौटने का आग्रह करते हुए कहते है कि धर्मज्ञ चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है-

चतुर्वणामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्।
आहुर्धर्मज्ञ धर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमिच्छसि।।[24]

रामायण कालीन संस्कृति में वानप्रस्थ आश्रम का परिपालन नियमानुसार होता था। महर्षि अगस्त के आश्रम में जब राम, लक्ष्मण और सीता जी पहुँचे तो अगस्त ने पहले अग्नि की आहुति दी, फिर वानप्रस्थ धर्म के अनुसार अतिथियों को अर्घ्य देकर सम्पूजित किया तत्पश्चात् उनको भोजन दिया-

अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथीन् प्रतिपूज्य च।
वानप्रस्थेनण धर्मेण सं तेषां भोजनं ददौ।।[25]

रामायण में मनुष्य (आर्य) और राक्षस (अनार्य) संस्कृतियों के आचार-विचार का चित्रण है। इनमें से मानव-संस्कृति पूर्णता धर्म पर आधारित थी इस सम्बद्ध में युद्धकाण्ड में एक स्पष्ट प्रसंग आया है। रावण के नाना माल्यवान ने रावण से सीता को ससम्मान लौटाकर राम से सन्धि करने का परामर्श देते हुए कहा था कि "ब्रह्मा ने सुर और असुर इन दोनों ही पक्षों की सृष्टि की है।जिसमें देवों का आश्रय धर्म है और असुरों का आश्रय अधर्म है"-

असृजद् भगवान् पक्षौ द्वावेव हि पितामहः।
सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयो।।
धर्मो हि श्रूयते पक्ष अमराणां महात्मनाम्।
अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च राक्षसं।।[26]

इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि रामायण में आर्य संस्कृति का स्वरूप धर्ममय तथा राक्षस-संस्कृति अधर्ममय है धर्म की विजय तथा अधर्म का नाश इस लोक का सनातन नियम है। रावण ने धर्म का नाश तथा सदैव अधर्म के पालन में ही तत्पर रहा-

तत् त्वया चरता लोकान् धर्मेऽपि निहितो महान्।
अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद् बलिनः परे।।
स प्रमादात् प्रवृद्धस्तेऽधर्मोऽतिर्ग्रसते हि नः।
विवर्धयति पक्षं चसुराणां सुरभावनः।।
विषयेषु प्रसक्तेन यत्किंचित्कारिणा त्वया।
ऋषिणामऽग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान।।[27]

इस कारण स्वर्ण लंका धूल धूसरित हो गई और राक्षसवंश भी नष्ट हो गया। बाल्मीकि रामायण राम का चरित्र धर्म का प्रतिमान है तो रावण का चरित्र अहंकारी अधर्म का दृष्टान्त है।

वाल्मीकि रामायण में मानव-संस्कृति के आदर्श प्रस्तुत करके समाज को दिशा-निर्देश देने का सफल प्रयास था। अतः रामायण में धर्म का स्थान सर्वोच्च है। राजा हो या प्रजा समस्त लोग रामायण के सम्पूर्ण धर्ममय परिवेश थे परिचित थे तथा अध्यात्मिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। जो धर्मपालन में लगा है उसके लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं- "नहि धर्माभिरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्"[28] जीवन में धर्म ही परम गति है- "धर्मो हि परमागतिः"[29] रामायणकालीन संस्कृति की धर्ममयता का ज्ञान इस ग्रन्थ के प्रारम्भ से ही हो जाता है-

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़वतः।।
चारि च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान कः कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः।।[30]

उपर्युक्त श्लोक में आये हुए कृतज्ञता, सत्यवादिता, दृढव्रतता, हितकांक्षा आदि गुण धर्म के ही सार्व-कालिक मूल्यों का निर्देश करते हैं। 'श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने देवी सम्पत्ति के रूप में वस्तुतः धर्म के रूप लक्षणों का ही कथन किया था-

अभयंसत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वा यायस्तप आर्जवम्।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दव ह्रीर चापलम्।।
तेजः क्षमाः धृतिः शौचमद्रोहो नातिमनिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।[31]

राम राज्य में कोई भी दूसरे की हिंसा नही करता था- "नाभ्यहिंसन् परस्परम्"[32] सभी प्रजाएं धर्मशील धर्मात्मा और धर्म परायण थी।[33] प्रतिज्ञापालन तथा सत्यवादिता हि उत्तम आचरण है। धर्मपालन ही स्वर्ग का मार्ग कहा गया है-

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादिता च
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमास्त्रीदिवस्य सन्तः[34]

राम ने नास्तिक व्यक्ति को परम अर्धमय कहकर चैरवत् दण्डनीय कहा है-

यथा हि चोरः स तथा हि
बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि

तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां सः
नास्तिके नाभिमुखो बुद्धः स्यात्।।[35]
संसार में धर्मरत तेजस्वी दानी
तथा अहिंसक व्यक्ति ही सुपूज्य है-
धर्मेरताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजिस्वनो दुनगुण प्रधानाः।
अहिंसका वीतमलाश्च लोके
भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः।।[36]

राम वैदिक काल के आदर्श पुरुष है। वाल्मीकि ऋषि ने नारद की अनुमति से मनुष्यों के उद्धार के लिए जिस आदर्श पुरुष का चरित्र-चित्रण किया है वह राम ही है इसलिए यदि भारत का उत्कर्ष देखना हो तो घर-घर में रामायण में वर्णित सांस्कृतिक चेतना का पठन-पाठन एवं मनन होना चाहिए। रामायण में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के सच्चे स्वरुप का उल्लेख प्राप्त होते है। वास्तव में भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत वेद है। रामायण में वर्णित तत्कालीन सामाजिक स्थिति की उच्च आदर्शता को प्रत्यक्ष करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि "वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति नही था जो वेद के छः अंगो को न जानता हो-

नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्यन।।[37]

रामायण में जिस प्रकार मनुष्य को शिक्षा दी जाती थी उसी प्रकार राक्षसों एवं वानरों को शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा प्रदान की जाती थी। हनुमान जी जब सुग्रीव के दूत वनकर सर्वप्रथम राम से मिलते है उस समय उनके वाक्-कौशल से प्रभावित होकर राम उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार दिखाई देते है- "जो इस तरह की बाते कर सकता है, निश्चय ही इन्होंने समस्त व्याकरण कई बार सुने है क्योंकि बहुत बोलने पर भी इन्होंने कोई भूल नही की" -

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किचिंदपशब्दितम्।।
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुरवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचिद्।।[38]

मुख्यतः नर, वानर और राक्षस इन तीनो समुदायों का सांस्कृतिक परिचय हमें आदिकाव्य में भलीभांति प्राप्त होता है। जिससे हमें आजकल के जीवन में उत्पन्न सामाजिक संकटों से बचने उपाय परिलक्षित होता है। राम की श्रोष्ठता ही हमें उनके सुख का कारण प्रतीत कराती है और सीता जी के अग्नि प्रवेश के समय राम को व्याकुल देखकर ब्रह्म, शंकर, इन्द्र, वरुण आदि ने जब कहा- "कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्धयसे"[39] तब राम ने उत्तर दिया- "आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्"[40] इस प्रकार राम को विजय मानव संस्कृति की विजय के रुप में दिखाई देती है।

हिन्दू जाति के धार्मिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अमिट प्रभाव है। हिन्दू परिवार में जन्म एवं विवाह के अवसरों पर राजा सम्बन्धी एवं राम विवाह सम्बन्धी गीत गाये जाते है शरीर की अन्तिम यात्रा "राम नाम सत्य है" की ध्वनि के साथ होती है। सीता का प्रतिवत्र्य, राम की गुरुभक्ति एवं आज्ञापालन, लक्ष्मण का भातृप्रेम, दशरथ की सत्य सन्धता, कौशल्या का वात्सल्य भरत की भ्रातृभक्ति आदर्श लोक शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।

अपने विचारों, कृतियों और संदेशों के द्वारा सांस्कृतिक धारा को अभिनव दिशा मोड़ देना और में लोगों को सांस्कृतिक विकास की ओर प्रवृत्त कर देना महर्षि वाल्मीकि की महत्वपूर्ण देन है। सांस्कृतिक इतिहास से प्रतीत होता है कि यदि कोई एक विशिष्ट पुरुष न हुआ होता तो देश की संस्कृति आज जहाँ है वहाँ से बहुत दूर होती। भारत के विशाल प्रांगण में अगणित जातियों और वर्गो को एक सूत्र में उपनिबद्ध करने वाली भारतीय संस्कृति की यह विशेषता स्वाभाविक है।इसलिए रामायण भारतीय सांस्कृतिक चेतना के आदर्शवाद का उज्जवलतम प्रतीक है।

सन्दर्भ – सङ्केत :

1. शांकर भाष्य वेदान्त सूत्र 3.1.24.
2. ऐतरेय ब्राह्मण - 4.5.1.
3. श्री चक्रवती राजगोपालाचार्य
4. बाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड - 119-26.
5. वाल्मीकि रामायण युद्ध 125-30-32.
6. वाल्मीकि रामायण बाल0 6-17.
7. वाल्मीकि रामायण बलि 13.14.

8. वाल्मीकि रामायण युद्ध,128.104.
9. वाल्मीकि रामायण बाल0 6.19.
10. वाल्मीकि रामायण बाल0 6.13.
11. वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड 5.23-24.
12. वाल्मीकि रामायण अयोध्या 67.38.
13. वाल्मीकि रामायण अयो0 40.7.
14. वाल्मीकि रामायण अयो0 30, 43-45.
15. वाल्मीकि रामायण अध्यो0 106.19.
16. वाल्मीकि रामायण बाल0 106.21.
17. वाल्मीकि रामायण बाल0 26.5.
18. वाल्मीकि रामायण अयो0 105.33.
19. वाल्मीकि रामायण अयो0 100.47.
20. वाल्मीकि रामायण बाल0 13.15-17.
21. वाल्मीकि रामायण अख्य 74.6-8.
22. बाल्मीकि रामायण अयो0 12.84.
23. वसिष्ठ धर्मसूत्र - 8.13.
24. वाल्मीकि रामायण अयो0 106.22.
25. वाल्मीकि रामायण अरव्य 12.27.
26. वाल्मीकि रामायण युद्ध 35.12-13.
27. वाल्मीकि रामायणयुद्ध 35.15-17.
28. वाल्मीकि रामायण उत्तर 10.33.
29. वाल्मीकि रामायण उत्तर 3.10.
30. वाल्मीकि रामायण बाल0 1. 2-3.
31. श्रीमद्भगवद्गीता 16.1-3.
32. वाल्मीकि रामायण युद्ध 128, 100.
33. वाल्मीकि रामायण बाल 6.6 युद्ध0 128-105.
34. वाल्मीकि रामायण अयो0 109.31.
35. वाल्मीकि रामायण अयो0 109.34.
36. वाल्मीकि रामायण अयो0 109, 36.
37. वाल्मीकि रामायण बाल0 6.15.
38. वाल्मीकि रामायण किष्कि0 3.28-30.
39. वाल्मीकि रामायण युद्ध 117.11.
40. वाल्मीकि रामायण युद्ध 117.11.

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण भाग 1-2- गीता प्रेस- गोरखपुर, संवत 2033
2. श्रीमद्भगवद्गीता, शांकरभाष्य - गीताप्रेस गोरखपुर- संवत 2061
3. भारतीय संस्कृति-डॉ0 शिवबालक द्विवेदी - ग्रन्थम मेस्टन रोड कानपुर
4. भारत का सांस्कृतिक इतिहास- डॉ0 राजेन्द्र पाण्डेय उ0प्र0 -हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ।
5. भारतीय संस्कृति, प्रो0 शिवदत्त ज्ञानी, राजकमल प्रकाशन, भारतीय विधान भवन मुम्बई
6. भारतीय संस्कृति का उत्थान, डॉ0 रामजी उपाध्याप, रामनारायण -बेनीमाधव प्रकाशक - इलाहाबाद- 2, 1966
7. हमारी प्राचीन संस्कृति, इन्दुमति मिश्र, रमाशंकर भागव,- फाइन प्रेस 14, शिव जी मार्ग लखनऊ
8. रामायणकालीन संस्कृति-डॉ0 शान्ति कुमार नानू राम,-व्यास साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली, 1958
9. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उ0 प्र0 संस्कृत संस्थानम् -लखनऊ) - 2000, (तृतीय खण्ड आर्ष काव्य)

•